
इकाई 2 दृष्टिकोण एवं प्रतिमान

इकाई की रूपरेखा

- 2.0 उद्देश्य
- 2.1 प्रस्तावना
- 2.2 आरंभिक दृष्टिकोण
 - 2.2.1 आस्थाएं और अंधविश्वास
 - 2.2.2 क्लासिकी दृष्टिकोण
 - 2.2.3 भौतिक शारीरिक दृष्टिकोण
 - 2.2.4 आलोचनात्मक समीक्षा
- 2.3 समकालीन दृष्टिकोण
 - 2.3.1 प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण
 - 2.3.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण
 - 2.3.3 सामाजिक समस्याओं का गांधीवादी दृष्टिकोण
- 2.4 इन दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता
 - 2.4.1 प्रकार्यवादी दृष्टिकोण का समीक्षात्मक पुनर्विवेचन
 - 2.4.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण की समालोचना
 - 2.4.3 गांधीवादी दृष्टिकोण पर पुनर्दृष्टि
- 2.5 समकालीन सामाजिक वास्तविकता : दुष्क्रियात्मक पक्ष
 - 2.5.1 विश्व स्तरीय दुष्क्रियाएं
 - 2.5.2 स्थानीय दुष्क्रियाएं
- 2.6 रूपांतरण की प्रतिमानों एवं सामाजिक समस्याएँ
 - 2.6.1 उदारतावादी-पूँजीवादी प्रतिमान
 - 2.6.2 साम्यवादी प्रतिमान
 - 2.6.3 लोकतंत्रीय समाजवाद की प्रतिमान
 - 2.6.4 भारतीय प्रयोग और गांधीवादी प्रतिमान
- 2.7 राज्य हस्तक्षेप की सीमाएँ
 - 2.7.1 अहस्तक्षेप (लेसेफेयर) की नीति
 - 2.7.2 सामूहिकतावादी - विचारधाराएं
 - 2.7.3 सीमाएं
- 2.8 सारांश
- 2.9 शब्दावली
- 2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

2.0 उद्देश्य

प्रथम इकाई में हमने सामाजिक रूपांतरण एवं समस्याओं की व्याख्या की। प्रथम इकाई को पढ़ने के बाद आपने इन दोनों संप्रत्ययों एवं इनके संबंध को समझ लिया होगा।

अब इकाई 2 में हम सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण एवं विकास की प्रतिमानों की परिचर्चा कर रहे हैं। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप :

- सामाजिक समस्याओं के अध्ययन के विभिन्न दृष्टिकोण समझ सकेंगे;
- प्रकार्यवादी, मार्क्सवादी एवं गांधीवादी दृष्टिकोणों के मूल निरूपण की व्याख्या कर सकेंगे;
- इन दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता का परीक्षण कर सकेंगे;
- सामाजिक-आर्थिक विकास के प्रकार्यात्मक पक्षों का अर्थ एवं वैकल्पिक दृष्टिकोणों की आवश्यकता समझ सकेंगे;
- विकास की विभिन्न प्रतिमानों का वर्णन कर सकेंगे; तथा
- राज्य की भूमिकाओं एवं राज्य के हस्तक्षेप को स्पष्ट कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

रूपांतरण के प्रत्यय से आप इकाई 1 में परिचित हो चुके हैं। सभी समाजों में किसी न किसी रूप में मंद या तीव्र परिवर्तन होता है। उन समाजों में जहाँ रूपांतरण की प्रक्रिया मंद होती है, बदलती हुई दशाओं से समायोजन करने में कठिनाइयाँ कम होती हैं। कुल मिलाकर, सामाजिक रूपांतरण की मंद प्रक्रिया जनजातीय एवं कृषिक संरचनाओं में दिखाई देती है, जबकि नगरीय – औद्योगिक सामाजिक संरचना में, जिनके नगर, उच्च प्रौद्योगिकी, आधुनिक उत्पादन, उपभोक्तावाद, परिवहन एवं संचार के त्वरित साधन, प्रवासन, गतिशीलता, अनामता, द्वितीयक समूह एवं अवैयक्तिक संबंध विशेष लक्षण हैं, यह प्रक्रिया अधिक तीव्र होती है।

सामाजिक रूपांतरण के त्वरित होने से उत्पन्न तनाव और समाज की अपने संरचनात्मक ढाँचे को बदलती हुई दशाओं के अनुकूल पुनः ढालने की आंशिक अयोग्यता का होना भी, या तो सामाजिक व्यवस्था की वर्तमान चुनौतियों को सशक्त करता है या नए तनाव या समस्याएँ पैदा करता है।

नगरीकरण का उदाहरण लेकर इस बिंदु की व्याख्या की जा सकती है। नगरीकरण, एक प्रक्रिया के रूप में, सामाजिक रूपांतरण का एक महत्वपूर्ण सूचक है। साथ ही यह प्रक्रिया सामाजिक समस्याएँ जैसे निर्धनता, बेकारी, नगरों में अत्यधिक भीड़, आवास का अभाव, नगरीय सुविधाओं की कमी, अवैयक्तिक संबंध, गंदी बस्तियाँ तथा ऐसा पर्यावरण जो बाल अपराध, अपराध तथा समाज विरोधी क्रियाओं को जन्म देती है। एक सामाजिक प्राणी के रूप में मानव एक ओर, त्वरित सामाजिक रूपांतरण का सामना करता है और दूसरी ओर सामाजिक रूपांतरण से जनित सामाजिक समस्याओं के उचित हल ढूँढने का सतत प्रयास करता है।

यह स्पष्ट है कि सामाजिक समस्याएँ समाजों को दुष्प्रभावित करती हैं तथा उनकी प्रकृति को समझने और उत्तर प्राप्त करने के लिए यह सार्थक होगा कि विभिन्न समाजशास्त्रीय दृष्टिकोणों की व्याख्या की जाए तो सामाजिक समस्याओं की प्रकृति एवं उनकी उत्पत्ति को समझने के क्रम में विकसित हुई हैं। इस बिंदु पर ध्यान रखना होगा कि समाज का संबंध सामान्य एवं असामान्य दोनों दशाओं से है। समाज सुखी परिवारों से उतना ही संबंधित है जितना कि दुखी या समस्याओं से ग्रसित परिवारों से। समाजशास्त्र का एक विद्यार्थी सामाजिक समस्याओं का अध्ययन इसलिए करता है ताकि वह असामान्य सामाजिक दशाओं को जो सामाजिक प्रकार्यात्मक पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं, अच्छी तरह समझा सके। सामाजिक एवं वैयक्तिक समस्याओं में निकट संबंध है। वे समस्याएँ जिनकी प्रकृति का आभास वैयक्तिक है जैसे बीमारी, वैयक्तिक हिंसा, कुपोषण, आदि, सामाजिक दशाओं से जुड़ी हुई हैं जो हजारों व्यक्तियों को, उसी प्रकार की जीवन स्थितियों में पीड़ित करती हैं।

2.2 आरंभिक दृष्टिकोण

ऐतिहासिक अर्थ में सत्रहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ तब जब राज्य तथा शासकीय अभिजन का प्रमुख संबंध कानून एवं व्यवस्था से था, मुख्य सामाजिक समस्या के रूप में अपराध की ही गणना होती थी। एक समस्या के रूप में अपराध ने पूर्वकालीन सामाजिक विचारकों का ध्यान आकर्षित किया। उस समय के अनेक अभ्यास या तो विश्वासों एवं अंधविश्वासों के रूप में थे या अकाल, महामारी एवं अपराध की समस्याओं के गंभीर तथा व्यवस्थित अर्थ समझने से संबंधित थे। समझने के उद्देश्य से उनका वर्गीकरण निम्नलिखित प्रकार से किया जा सकता है :

- विश्वास एवं अंधविश्वास
- शास्त्रीय दृष्टिकोण
- भौतिक शारीरिक दृष्टिकोण

2.2.1 आस्थाएं और अंधविश्वास

मानव जीवन की आदिम अवस्था से आरंभ होकर आज तक मानव अकाल, दुर्लभता, महामारी, हिंसा, हत्या एवं अपराध का सामना करता रहा है। अनेक पूर्वकालीन समाजों में या समाज के कुछ भागों में आज भी इन समस्याओं को आत्माओं, प्रेतों, जादूगरनियों के प्रभावों का परिणाम माना जाता है। कार्य-कारण संबंध के मध्य उचित समझ का न होना ऐसे विश्वासों का आधार है।

2.2.2 क्लासिकी दृष्टिकोण

अठारहवीं शताब्दी से प्रारंभ होकर अपराधों को अधिक व्यवस्थित रूप से समझने के प्रयास किए गए। सर्वप्रथम सीजर बीकारियाँ (1764) जो एक इटली निवासी था तथा जेरमी बेन्थम (1823) जो एक अंग्रेज था, इन दोनों ने एक सामाजिक समस्या के रूप में अपराध के कारणों की व्याख्या के गंभीर प्रयास किए। उनके निरूपण शास्त्रीय सिद्धांत या दृष्टिकोण के रूप में जाने जाते हैं। इस सिद्धांत में सुखवाद या मानव में सुख के खोज की प्रकृति पर बल था। सुखवादी दृष्टिकोण स्वीकृत सामाजिक प्रतिमान के उल्लंघन को अभिप्रेरित करते हैं। इस प्रकार से परिणामतः अपराध होते हैं। दूसरे शब्दों में, कुछ लोगों को अपराध करने में सुख मिलता है अर्थात् अपराध उनके लिए उपयोगितावादी हैं।

2.2.3 भौतिक शारीरिक दृष्टिकोण

बाद में कुछ आनुभविक या प्रत्यक्षवादी प्रयास किए गए जिससे अपराध की एक सामाजिक समस्या के रूप में व्याख्या की गई। सीजर लोम्ब्रोसो ने (1836-1909), जो इटली निवासी था, भौतिक शारीरिक गुणों से अपराध के संबंध का अध्ययन किया। इसलिए, यह दृष्टिकोण भौतिक शारीरिक दृष्टिकोण या अपराध के सिद्धांतों के इटेलियन सम्प्रदाय के रूप में प्रसिद्ध है। चूँकि उसने अपने कल्पित अभिग्रहों को आनुभविक पद्धतियों से सत्यापित करने का प्रयास किया, इसे अपराध की व्याख्या का प्रत्यक्षवादी दृष्टिकोण भी कहा गया है। लोम्ब्रोसो के अनुसार :

- अपराधियों के कुछ निश्चित जन्मजात शारीरिक गुण होते हैं,
- अपराधियों के शारीरिक गुण सामान्य व्यक्तियों से भिन्न होते हैं,

इन दृष्टिकोणों की आलोचनात्मक समीक्षा इनकी परिसीमाओं को दर्शाती है जो निम्नलिखित हैं:

- प्रथम दृष्टिकोण अंधविश्वासों और अज्ञानता पर आधारित था,
- बाद के दोनों दृष्टिकोण आज केवल ऐतिहासिक महत्व रखते हैं,
- वे अपराध के वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधारित नहीं हैं,
- शास्त्रीय तथा भौतिक शारीरिक दृष्टिकोण व्यक्ति पर केंद्रित हैं,
- उन्होंने सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक कारकों पर दृष्टि नहीं रखी है।

बोध प्रश्न 1

i) नगरीय औद्योगिक सामाजिक संरचना की प्रमुख विशेषताओं का तीन पंक्तियों में वर्णन कीजिए।

.....

.....

.....

ii) अपराध के शास्त्रीय दृष्टिकोण के दो प्रमुख प्रतिपादकों का जिस देश में उनका जन्म हुआ था – उसके सहित उल्लेख कीजिए।

.....

.....

.....

.....

iii) अपराध को सामाजिक समस्या के रूप में मानने वाले भौतिक शारीरिक दृष्टिकोण के एक प्रमुख प्रतिपादक का नाम उनके मूल देश सहित इंगित कीजिए।

.....

.....

.....

.....

iv) पूर्वकालीन दृष्टिकोणों की परिसीमाओं का विवेचन आठ पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

2.3 समकालीन दृष्टिकोण

उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय समाज में एक बड़े पैमाने पर सामाजिक रूपांतरण हुआ जिसकी विशेषता यह थी कि गिरजाघर, राजतंत्र, सामंतवाद की पकड़ तथा अधिकारों में ह्रास हुआ एवं धर्म निरपेक्ष वैचारिकी, लोकतंत्रीय राज्य तथा औद्योगिक क्रांति का उदय हुआ। उसी के अनुरूप विचारों, विश्लेषण की पद्धतियों तथा संप्रत्ययीकरण में परिवर्तन हुआ।

इस शताब्दी में समाज विज्ञान के क्षेत्र में दो सुस्पष्ट बौद्धिक प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर हुईं :

- प्रथम प्रवृत्ति में प्रमुख बल सामाजिक व्यवस्था की केन्द्रिकता पर था जिसके प्रमुख घटक पर्यवेक्षण, बंधुत्व संसक्ति एवं एकीकरण थे।
- दूसरी प्रवृत्ति में, सामाजिक गत्यात्मकता केंद्रीय विषय वस्तु थी जिसके घटक विरोधाभास एवं संघर्ष थे।

इन दोनों बौद्धिक प्रवृत्तियों से प्रकार्यवादी एवं मार्क्सवादी दृष्टिकोणों का उद्भव हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी में भारत पूर्णतया ब्रिटिश शासन की अधीनता के अंदर आ चुका था। ऐसी सामाजिक राजनीतिक पृष्ठभूमि में गांधीवादी विचार पद्धति ने अधीनता, उपनिवेशी सांस्कृतिक प्रभुत्व, ग्रामीण उद्योगों के ह्रास एवं अंधविश्वास की पकड़, भय तथा अस्पृश्यता की समस्याओं को जड़ से उखड़ फेंकने का रास्ता दिखाया।

समकालीन सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण में एक निश्चित बदलाव दृष्टिगोचर होता है। इसकी संक्षिप्त व्याख्या निम्नलिखित ढंग से की जा सकती है :

- सामाजिक समस्याओं, उनकी उत्पत्ति की पूर्वकालीन व्याख्या व्यक्तियों के प्रसंग में की जाती थी। अब, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक या संरचनात्मक कारकों पर बल है।
- पूर्वकालीन विश्लेषण के मुख्य बल सामाजिक व्यवस्था के अनुरक्षण तथा संतुलन के पर्यवेक्षण पर था जो कि सामाजिक परिवर्तन को एक संदेहास्पद घटना के रूप में मानता था। अब यह स्वीकार किया गया है कि तनाव तथा सामाजिक समस्याओं का उद्भव सामाजिक प्रणाली में विरोधाभास के कारण होता है जिसका हल किया जा सकता है। समकालीन समाजशास्त्र में सामाजिक समस्याओं की प्रकृति एवं उत्पत्ति की व्याख्या के भिन्न-भिन्न परिप्रेक्ष्य पाए जाते हैं। इन परिप्रेक्ष्यों ने दो प्रमुख दृष्टिकोणों को जन्म दिया है जो निम्नलिखित हैं :
- प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण
- मार्क्सवादी दृष्टिकोण

भारतीय संदर्भ में अपने राजनीतिक आंदोलन एवं सामाजिक पुनर्निर्माण के प्रयोगों के प्रकाश में गांधी ने सामाजिक समस्याओं की समाप्ति एवं भारतीय समाज के पुनर्गठन के लिए एक वैचारिक ढाँचा विकसित किया। इस तरह सामाजिक समस्याओं के विश्लेषण का तीसरा पक्ष गांधीवादी दृष्टिकोण है।

2.3.1 प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण

प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण समाज को एक प्रणाली के रूप में प्रस्तुत करता है, इसके अनुसार समाज अंतःसंबद्ध भागों का एक समुच्चय है जो सब मिलकर एक समग्र की रचना करते हैं। विश्लेषण की मूल इकाई समाज है तथा उसके विभिन्न भागों को उनके समग्र के संबंध में समझा जाता है। इस प्रकार सामाजिक संस्थाएँ, जैसे कि परिवार तथा धर्म का प्रकार्यवादियों द्वारा विश्लेषण, सामाजिक प्रणाली के एक भाग के रूप में, न कि पृथक इकाइयों के रूप में किया जाता है।

इस प्रकार समाज के सभी भाग प्रकार्यात्मक हैं जहाँ तक कि वे व्यवस्था कायम रखते हैं और उनकी स्वस्थ उत्तरजीविता में योगदान देते हैं। प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण दुष्क्रिया के प्रत्यय को किसी सामाजिक संस्था के प्रभावों के लिए भी प्रयोग करता है जो समाज के अनुरक्षण को कम करते हैं। दुष्क्रिया का प्रत्यय सामाजिक समस्याओं के आधुनिक अध्ययन के विशेष महत्व रखता है।

प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण दो समाजशास्त्रियों – अगस्त काम्टे एवं हरबर्ट स्पेंसर की कृतियों में स्पष्ट है। बाद में, उसका विकास इमाइल दुर्खीम ने किया। टेलकेट पारसनस एवं राबर्ट के मर्टन ने उसका परिष्कार किया। पूर्वकालीन प्रकार्यवादियों ने जीव और मानव शरीर में सादृश्यता प्रदान की। जिस प्रकार एक जीव कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ रखता है जिनकी संतुष्टि उसकी उत्तरजीविता के लिए अनिवार्य है उसी प्रकार समाज की कुछ मूलभूत आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी पूर्ति उसकी निरंतरता के लिए आवश्यक है। पूर्वकालीन प्रकार्यवादियों का मुख्य बल निम्नलिखित बिंदुओं पर था :

- भागों (व्यक्तियों, परिवार, धर्म, शिक्षा, विधि इत्यादि) तथा समग्र (समाज) के बीच संबंधों का अच्छी तरह बुना होना,
- व्यवस्था का सरलतापूर्वक कार्य करना,
- व्यवस्था को कायम रखना,
- संसक्ति, तथा
- सामाजिक बंधुत्व

i) प्रकार्यवादी पूर्वापेक्षाएँ

इस दृष्टिकोण के प्रमुख उपादानों में कुछ प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाएँ (सामाजिक अस्तित्व की आवश्यक दशाएँ) हैं। ये एकात्मकता, अनुकूलन एवं अनुरक्षण की प्रक्रियाओं को मजबूत करती हैं। इनके साथ ही ये पूर्वापेक्षाएँ समाज के सुचारु प्रकार्य में भी सहायता देती हैं। मुख्य पूर्वापेक्षाएँ निम्नलिखित हैं :

- भूमिका विभिन्नीकरण,
- संचार,
- प्रतिमानात्मक नियमन,

- समाजीकरण, और
- सामाजिक नियमन।

ii) भूमिका की अवधारणा

प्रकार्यात्मक विश्लेषण में "भूमिका" की अवधारणा का महत्वपूर्ण स्थान है। उसका अर्थ उस कार्य से है जो एक व्यक्ति का एक संस्था से करने की आशा की जाती है। व्यक्तियों को उनके व्यक्तिगत अभिप्रेरकों तथा सामाजिक आवश्यकता के आधार पर भूमिका सौंपी जाती है। इस तरह की भूमिका निष्पादित करने वाले लोग एक स्थिति या वर्ग के होते हैं। सभी समाजों में व्यक्तियों की एवं संस्थाओं के क्षेत्र में भूमिका विभिन्नीकरण पाया जाता है। ऐसे व्यक्तियों के समूह भिन्न-भिन्न भूमिका निष्पादित करते हैं। उसी प्रकार सामाजिक संस्थाएँ जैसे परिवार एवं धर्म भी अपनी सौंपी हुई तथा प्रत्याशित भूमिका निष्पादित करते हैं जो एक दूसरे से भिन्न होती है।

प्रकार्यवादी विश्लेषण के अनुसार यदि प्रकार्यवादी पूर्वापेक्षाएँ भंग हो जाती हैं, यदि भूमिका विभिन्नीकरण या भूमिका निष्पादन उचित नहीं है तो समाज की प्रकार्यात्मकता प्रभावित होगी और विभिन्न सामाजिक समस्याओं का उत्पन्न होना निश्चित है।

सामान्य निरूपणों की व्याख्या करने के बाद अब हम कुछ प्रमुख प्रकार्यवादी विचारकों के दृष्टिकोण की विशिष्ट व्याख्या में प्रवेश करते हैं :

iii) सामाजिक तथ्य और प्रतिमानहीनता

प्रकार्यवादी विश्लेषण में जिस प्रकार से भागों तथा समय के बीच संबंध की व्याख्या की गई है, उससे ऐसा आभास होता है कि समग्र भागों का एक योग है। फिर भी, दुर्खीम ने इस निरूपण को अपने श्रम विभाजन, धर्म तथा आत्महत्या के अध्ययनों में स्पष्ट शब्दों में अस्वीकार किया है।

दुर्खीम के विश्लेषण के प्रमुख बिंदु निम्नलिखित हैं :

- समाज की स्वजातिक प्रकृति,
- सामाजिक तथ्य, तथा
- प्रतिमानहीनता।

उसके अनुसार समाज एक स्व-विकसित वास्तविकता है (उसके शब्दों में यह वास्तविकता स्वजातिक है) जो कि व्यक्तियों से बाह्य है तथा उन पर आरोपित है। एक समाज के सदस्य सामाजिक तथ्यों द्वारा बाध्य हैं जो कि दुर्खीम द्वारा कार्य करने, सोचने तथा अनुभूति के ढंगों के रूप में परिभाषित किए गए हैं। ये व्यक्तियों से बाह्य हैं तथा बाध्यकारिता की शक्ति रखते हैं, जिसके कारण व्यक्तियों को सामाजिक तथ्यों के पालन करने की बाध्यता होती है।

दुर्खीम के विश्लेषण में, सामाजिक तथ्यों को सामान्य तथा व्याधिकीय प्रकारों में विभाजित किया जा सकता है। श्रम विभाजन, धर्म, विधि एवं नैतिकता सामान्य सामाजिक तथ्य हैं, जबकि प्रतिमान हीनता समाज की व्याधिकीय दशा है। श्रम विभाजन के उग्र स्वरूप की विशेषताएँ घातक प्रतिस्पर्धा, हित अभिविन्यास तथा व्यक्तियों में समाज का अभाव के रूप में प्रकट होती हैं। ऐसी स्थिति में प्रतिमान हीनता की प्रवृत्तियों का विकास होता है। दुर्खीम के प्रत्यय में, प्रतिमान हीनता एक प्रमुख सामाजिक समस्या है। दुर्खीम का विचार है कि अति विभिन्नीकरण तथा उग्र श्रम विभाजन होने पर सामूहिक अंतरात्मा की प्रबलता में कमी आती

है। ऐसी स्थिति में एक समूह के सदस्यों की क्रियाएँ सामान्य सामाजिक आदर्शों द्वारा नियमित नहीं हो सकतीं। विभिन्नीकरण का उग्र रूप सामान्य विश्वासों, नैतिकता तथा आदर्शों का अभाव प्रमाणविहीनता उत्पन्न करता है जिसे दुर्खीम द्वारा प्रतिमान हीनता कहा गया है।

अभ्यास 1

अपने ग्राम/स्थानीय क्षेत्र/कार्यालय के व्यक्तिगत बोध के आधार पर इन तीन क्षेत्रों में से किसी एक पर दो पृष्ठों में श्रम विभाजन की वास्तविक प्रकार्यात्मकता पर एक नोट लिखिए।

iv) सामाजिक व्यवस्था तथा मूल्य-मतैक्य

जिस प्रकार दुर्खीम का प्रमुख संबंध सामाजिक एकात्मकता के विषय से है उसी प्रकार, पारसन्स सामाजिक व्यवस्था पर बल देता है, जिसे अपनी पुस्तक "द सोशल सिस्टम" में विकसित किया है। उसका कहना है कि सामाजिक जीवन का मुख्य लक्षण पारस्परिक लाभ तथा शांतिपूर्ण सहयोग है, न कि पारस्परिक शत्रुता तथा विनाश। पारसन्स का विश्वास है कि सामान्य मूल्यों के प्रति वचनबद्धता केवल समाज के लिए व्यवस्था का एक आधार प्रदान करती है।

पारसन्स के अनुसार "मूल्य-मतैक्य" समाज में आधारभूत संयोजन सिद्धांत का निर्माण करता है। सामान्य लक्ष्य, एकता तथा सहयोग की व्युत्पत्ति सहभाजित मूल्यों, एकता एवं सहयोग से हुई है। क्या वांछनीय तथा उपयुक्त है, इसकी सामान्य संकल्पना मूल्य प्रदान करते हैं। विशिष्ट स्थितियों में लक्ष्य दिशा देते हैं। भूमिकाएँ साधन प्रदान करती हैं जिनसे मूल्यों तथा लक्ष्यों को कार्य में परिणति किया जाता है।

पारसन्स के अनुसार दो प्रमुख ढंगों से सामाजिक संतुलन (व्यवस्था के सभी अंगों का संतुलन) कायम रहता है :

- प्रथम में समाजीकरण होता है जिसके माध्यम से मूल्यों का संचार एक पीढ़ी से दूसरी में होता है तथा मूल्यों को आत्मसात किया जाता है जिससे वे व्यक्तित्व के अभिन्न अंग बन सकें। पश्चिमी समाज में परिवार तथा शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार से संबंधित प्रमुख संस्थाएँ हैं।
- दूसरे, सामाजिक नियंत्रण की विभिन्न विधियों के द्वारा भी यह कायम रहता है जो विचलन को रोकती हैं और व्यवस्था को बनाए रखती हैं। इस प्रकार, समाजीकरण और सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रियाएँ प्रणाली के संतुलन और व्यवस्था के अनुक्षण के लिए आधारभूत हैं।

इस प्रकार समाजीकरण तथा सामाजिक नियंत्रण की प्रक्रियाएँ समूह के सदस्यों के मध्य "मूल्य-मतैक्य" की चेतना का संचार करती हैं और व्यवस्था के अनुक्षण में सहायक होती हैं।

पारसन्स के अनुसार अनुकूलन, लक्ष्य प्राप्ति, एकीकरण और प्रतिरूप अनुक्षण प्रकार्यात्मक पूर्वपेक्षाएँ हैं। समाज के अस्तित्व के लिए ये अनिवार्य पूर्व दशाएँ हैं।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि मूल्य-मतैक्य, व्यवस्था, समाजीकरण और सामाजिक नियंत्रण के अभाव में सामाजिक समस्याएँ पैदा होती हैं।

मूल्य-मतैक्य, सामाजिक संतुलन तथा व्यवस्था, प्रकार्यात्मक पूर्वापेक्षाओं, अनुकूलन, लक्ष्य प्राप्ति, एकीकरण तथा प्रतिरूप अनुरक्षण के अभाव में दुर्बल हो जाती हैं। इस स्थिति में समाज को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

अभ्यास 2

भारत में विभिन्न धर्मों, भाषाओं तथा क्षेत्रों के लोगों के सामाजिक एकीकरण की प्रकृति पर दो पृष्ठों में एक टिप्पणी तैयार कीजिए।

v) सामाजिक दुष्क्रिया, प्रतिमानहीनता और संरचना

मर्टन कहता है कि सामाजिक समस्याएँ वस्तुनिष्ठ एवं आत्मनिष्ठ दोनों पक्ष रखती हैं जिन्हें वह गोचर एवं अगोचर अथवा अंतर्निहित की संज्ञा देता है। उसके अनुसार केवल गोचर सामाजिक समस्याओं, जिन्हें स्पष्ट रूप से समाज में पहचाना गया है, का ही केवल अध्ययन नहीं किया जाए बल्कि अगोचर सामाजिक समस्याओं का भी अध्ययन किया जाए, जो कि उन दशाओं की ओर संकेत करती हैं जिनका प्रचलित हितों एवं मूल्यों से विरोध है, परंतु सामान्यतः ऐसा माना नहीं जाता। गोचर समस्याएँ व्यक्त एवं वस्तुनिष्ठ हैं जबकि अगोचर समस्याएँ दबी हुई अथवा अंतर्निहित होती हैं। सामाजिक समस्याओं के दोनों गोचर तथा अगोचर पक्ष, दुष्क्रिया से प्रभावित होते हैं।

मर्टन के विश्लेषण में सामाजिक समस्याओं का अध्ययन व्यवहार के प्रतिमान, विश्वास तथा संगठन के दुष्क्रिया पर भी केंद्रित हैं केवल उनके प्रकार्यों पर ही नहीं। मर्टन के अनुसार एक सामाजिक दुष्क्रिया एक प्रक्रिया है जो सामाजिक व्यवस्था की स्थिरता तथा अस्तित्व को क्षतिग्रस्त करती है। यह प्रत्यय इस भ्रम को तोड़ता है कि समाज में हर चीज़ सद्भाव एवं एकीकरण के लिए ही कार्य करती है।

एक सामाजिक दुष्क्रिया व्यवस्था के एक विशेष भाग की प्रकार्यात्मक आवश्यकता की पूर्ति में एक विशिष्ट अपर्याप्तता है। दुष्क्रिया परिणामों का एक समुच्चय प्रदान करता है जो कि एक सामाजिक व्यवस्था में प्रकार्यों की आवश्यकताओं में हस्तक्षेप करता है। उदाहरणार्थ, ग्रामों से नगरों को बड़े पैमाने पर प्रवासन सामाजिक एकात्मकता, जनांकिकीय रचना तथा ग्रामीण जीवन के आचार तत्व को कायम रखने के लिए दुष्क्रियात्मक है। साथ ही, वह नगरीय जीवन के लिए भी दुष्क्रियात्मक है क्योंकि वह भीड़-भाड़ में वृद्धि करता है और नगरीय सुख सुविधाओं में कमी पैदा करता है। एक सामाजिक व्यवस्था में वही सामाजिक प्रतिरूप कुछ के लिए दुष्क्रियात्मक और दूसरों के लिए प्रकार्यात्मक हो सकता है।

मर्टन ने सुझाव दिया कि सामाजिक संरचना की कुछ दशाएँ ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न करती हैं जिसमें सामाजिक संहिताओं का अतिलंघन एक सामान्य प्रत्युत्तर बन जाता है। सामाजिक तथा सांस्कृतिक संरचना के तत्वों में दो तत्व सामाजिक समस्याओं की अध्ययन सुलभता के उद्देश्य से महत्वपूर्ण हैं। इस प्रसंग में, सामाजिक संरचना के दो पक्ष दृष्टि में रखना आवश्यक है :

- प्रथम में, संस्कृति द्वारा परिभाषित लक्ष्य सम्मिलित हैं। इसमें आकांक्षात्मक संदर्भ समाविष्ट हैं। इन सांस्कृतिक आकांक्षाओं में से कुछ मानव की मौलिक प्रेरणाओं से संबंधित हैं परंतु वे उनके द्वारा निर्धारित नहीं होती।
- संरचना का दूसरा पक्ष समाज द्वारा अनुमोदित साधन है।

प्रत्येक सामाजिक समूह अपने सांस्कृतिक उद्देश्यों के साथ उस नियमन को जोड़ता है जो इन उद्देश्यों की ओर बढ़ने के लिए अनुमोदित पद्धतियों की संस्थाओं में मूलरूप से निहित हैं।

लक्ष्यों तथा संस्थागत साधनों पर विभिन्न विभेदक बल के कारण समाज अस्थिर हो जाता है और वहाँ प्रतिमानहीनता विकसित होती है।

इस तरह मर्टन द्वारा प्रतिपादित प्रतिमानहीनता का सिद्धांत – तथा अवसरों की संरचनाएँ बताती हैं कि विभिन्न प्रकार के विचलित व्यवहार की दरें वहाँ सबसे उच्च होती हैं जहाँ संस्कृति द्वारा उत्प्रेरित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए समाज द्वारा प्रदत्त विधिसंगत साधनों तक लोगों के पहुंचने के अवसरों का अभाव होता है। उदाहरणार्थ, संस्कृति इसकी पुष्टि करती है कि एक समाज के सभी सदस्यों को अपनी सामाजिक परिस्थिति सुधारने का अधिकार है, परंतु उसके लिए स्वीकृत साधनों से वे वंचित कर दिए जाते हैं। अवसरों की यह अस्वीकृति सामाजिक समस्याओं के संरचनात्मक स्रोतों को समझने में सहायक हो सकती हैं।

बोध प्रश्न 2

i) दुष्क्रिया क्या है? सामाजिक समस्याओं के अध्ययन में उसके महत्व का वर्णन आठ पंक्तियों में कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) अगोचर प्रकार्य की परिभाषा कीजिए तथा प्रकार्यात्मक दृष्टिकोण में उसकी महत्ता चार पंक्तियों में दर्शाइए।

.....

.....

.....

.....

2.3.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण

मार्क्स इस सरल अभिमत से आरंभ करता है कि जीवित रहने के लिए मानव को भोजन तथा भौतिक वस्तुओं का उत्पादन करना आवश्यक है। इस क्रिया में वह अन्य व्यक्तियों से संबंध स्थापित करता है। सरल आखेट चरण से जटिल औद्योगिक चरण तक उत्पादन एक सामाजिक उद्यम है।

प्रागैतिहासिक समाजों के अलावा सभी समाज आधारभूत विरोधाभास रखते हैं जिसका अर्थ है कि वे अपने वर्तमान स्वरूप में जीवित न रहेंगे। इन प्रतिवादों में निर्धन का शोषण धनी के द्वारा सन्निहित है। उदाहरणार्थ, सामंती समाज में जमींदार कृषिदास का शोषण करते थे। पूँजीवादी समाज में पूँजीपति अपने श्रमिकों का शोषण करते हैं। यह इन दोनों वर्गों के बीच हितों का मूलभूत संघर्ष उत्पन्न करता है क्योंकि एक, दूसरे की लागत पर लाभ उठाता है।

मार्क्स के अनुसार, पूँजीवादी व्यवस्था अनेक सामाजिक समस्याओं से ग्रसित है जैसे कि :

- मानव का मानव के द्वारा शोषण,
- असमानता और गरीबी,
- अपने द्वारा उत्पादित वस्तु से श्रमिक का अलगाव
- अपमानविकीकरण।

इस प्रसंग में हम मार्क्सवादी सैद्धांतिक ढाँचे में असमता तथा निर्धनता की विशेष रूप से विवेचना करना चाहेंगे। यह दोनों समस्याएँ भारतीय समाज से विशेष रूप से संबंधित हैं।

i) असमानता

मार्क्स के अनुसार असमानता सभी समाजों में घटित होती है क्योंकि उत्पादन के साधनों का असमान वितरण है।

मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में एक समाज की समता पर आधारित प्रमुख पूर्वापेक्षा है कि "हर एक को उसकी आवश्यकतानुसार" जबकि पूँजीवादी व्यवस्था में तथा प्रकार्यवादी विश्लेषण में "हर एक को उसकी क्षमता के अनुसार" पर बल दिया जाता है।

प्रकार्यवादी तथा मार्क्सवादी असमता के स्रोतों पर असहमत हैं। दोनों सहमत हैं कि असमता समाज में श्रम विभाजन से जुड़ी है। मार्क्स ने बल देकर कहा कि सामाजिक असमता अंतिम रूप से आर्थिक असमानता तथा वंचन का परिणाम है। प्रकार्यवादियों के अनुसार स्तरीकरण समाज के लिए प्रकार्यात्मक है तथा स्तरीकृत समाजों में सामाजिक असमता का होना स्वाभाविक है। सभी मानवों के गुण, योग्यता, निष्पादन तथा उपलब्धियाँ समान नहीं होतीं। इस प्रकार प्रकार्यवादी विश्लेषण में सामाजिक असमता भी प्रकार्यवादी दिखाई देती है।

ii) निर्धनता

पूँजीवादी समाज में निर्धनता, मार्क्स के अनुसार, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के द्वारा जनित असमानता के संदर्भ में ही समझी जा सकती है। उत्पादन के साधनों के जो स्वामी हैं, उन्हीं के पास धन का संकेंद्रण पाया जाता है। श्रमिक वर्ग के सदस्य केवल अपने श्रम के स्वामी हैं जिसे वे श्रमिक बाजार में मज़दूरी के बदले बेचने के लिए बाध्य है।

मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्य में, पूँजीवादी समाज में राज्य शासक वर्ग के हितों का परावर्तन करता है, इसलिए, सरकारी उपायों से निर्धनता के कठोर प्रभावों को कम करने के सिवाय बहुत थोड़ी आशा की जा सकती है।

पूँजीवादी समाजों में भी सामाजिक कल्याण एवं सुरक्षा को इसलिए अपनाया गया है ताकि निर्धन एवं सामाजिक रूप से वंचित लोगों की कठिनाइयों को कम किया जा सके। इन उपायों ने सहायतार्थी की सहायता की है परंतु उनका परिणाम धन का, धनी से निर्धन को, पुनः वितरण नहीं है। अति निर्धनता तथा कुछ ही हाथों में धन का एकत्र हो जाना पूँजीवादी

व्यवस्था के अपरिहार्य परिणाम हैं। निर्धनता का हल सामाजिक सुरक्षा के उपायों में सुधार नहीं है। पूँजीवादी व्यवस्था में सामाजिक समस्याओं की तरह उसके लिए सामाजिक संरचना में आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है।

2.3.3 सामाजिक समस्याओं का गांधीवादी दृष्टिकोण

गांधीवादी दृष्टिकोण को उचित रूप से समझने के लिए, उसके मूलभूत परिप्रेक्ष्य तथा तात्कालिक सामाजिक एवं राजनीतिक विषयों में स्पष्ट भेद करना आवश्यक है। जहाँ तक कि उसके मूलभूत परिप्रेक्ष्य का संबंध है, गांधी एक नैतिक व्यवस्था की रचना चाहते थे, जो सत्य, अहिंसा, बंधुत्व, स्वराज्य, शक्ति एवं अर्थव्यवस्था का विकेंद्रीकरण, सादगी एवं निश्चित शांतिपूर्ण साधनों द्वारा अन्याय का प्रतिरोध, जिसे सत्याग्रह कहा जाता है, पर आधारित हो।

गांधी के युग में भारतीय समाज के सामने अनेक सामाजिक समस्याएँ थीं। इनमें से कुछ बड़े और अन्य छोटे पैमाने की थीं जैसे कि स्त्रियों की निम्न स्थिति, अस्पृश्यता, निर्धनता, निरक्षरता, उपनिवेशी शिक्षा, ग्रामीण पुनर्निर्माण तथा दैनिक राजनीतिक समस्याएँ। जब गांधी भारतीय राजनीतिक पटल पर एक राजनीतिक एवं एक सामाजिक विचारक के रूप में प्रकट हुए वह इनकी गंभीरता से परिचित थे।

i) साधन एवं साध्य

सामाजिक समस्याओं का गांधीवादी दृष्टिकोण साधन तथा साध्य को एक समग्र का भाग मानता है जिसका लोकातीत संदर्भ है, मार्क्स की तरह नहीं जो साध्य पर विशेष बल देता है। गांधी एक शोषणरहित सामाजिक व्यवस्था के पक्षधर थे क्योंकि वह भली प्रकार समझते थे कि हिंसा एक शोषणपूर्ण व्यवस्था में निहित होती है। गांधी के जीवन का महत लक्ष्य भारत के लिए "स्वराज्य" की प्राप्ति था। उनका सामाजिक-राजनैतिक दर्शन सत्य, अहिंसा और साध्य-साधन की एकता पर आधारित था।

गांधी के लिए साधन उपकरण मात्र नहीं है, वे सृजनशील क्षमता से परिपूर्ण हैं। उनकी रचनात्मक साधनों की खोज ने जो एक सकारात्मक आध्यात्मिक निर्णय से निःसृत है मानव जाति को एक ऐसा नैतिक अस्त्र प्रदान किया जो सब प्रकार के उत्पीड़नों का विरोध करने के लिए है – चाहे ये उत्पीड़न सामाजिक व्यवस्था के अंदर से किए गए हों या बाहर से। गांधी ने इस नैतिक अस्त्र को "सत्याग्रह" के नाम से पुकारा है। उनके लिए केवल साध्य सही नहीं बल्कि उनके प्राप्त करने वाले साधन भी उतने ही पवित्र होने चाहिए।

ii) नवीन आर्थिक व्यवस्था

गांधी ने कहा है कि एक अहिंसात्मक समाज की रचना कारखाने की सभ्यता पर नहीं हो सकती है बल्कि उसकी रचना स्व-निर्भर गाँवों से ही हो सकती है। आज की प्रचलित हिंसा की जड़ें मुख्यतः आर्थिक कारकों में हैं तथा उसका उपचार समाज में धन के केंद्रीयकरण को हटाना है। उत्पादन व्यवस्था को आवश्यकताओं के प्रगतिशील तथा नियमित अल्पीकरण के आदर्श पर आधारित होना चाहिए न कि आवश्यकताओं के बहुलीकरण पर। अर्थव्यवस्था को जीवन केंद्रित होना चाहिए न कि वस्तुओं के विशाल उत्पादन पर। इसका अर्थ है कि सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था को आवश्यकतानुकूल उत्पादन के आध्यात्मिक सिद्धांत पर चलना चाहिए न कि अधिकतमकरण सिद्धांत पर। परिणामतः इसे एक शोषणरहित अर्थव्यवस्था होना है जो सरल और सीमित औद्योगिकी पर आधारित हो। सामाजिक और आर्थिक संगठन पर विकेंद्रीकरण होना चाहिए – जिसका आधार आवश्यकतानुकूल स्वायत्तता

का सिद्धांत हो। सामाजिक और आर्थिक व्यवस्थाओं को स्पर्धारहित तथा अर्जनशीलतारहित होना चाहिए जिसका आधार न्यासिता का सिद्धांत हो।

iii) असमानता

गांधीवादी दृष्टिकोण यह विचार प्रस्तुत करता है कि आर्थिक समता का लक्ष्य मज़दूरी की समानता है जो कि ईमानदारी से दिन भर काम करने पर एक व्यक्ति को दी जाती है, चाहे वह एक वकील, डॉक्टर, शिक्षक या मेहतर हो। समानता की इस स्थिति में पहुंचने के लिए अग्रिम उन्नतिशील प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

अतः गांधीवादी विचारों में आर्थिक समानता का अर्थ यह नहीं है कि सभी व्यक्ति शब्दार्थ के अनुसार समान धनराशि अथवा सांसारिक वस्तुओं की समान तादाद उनके कब्जे में होगी। यह संभव है कि धनवान और निर्धन के बीच अंतर को कम किया जाए। उन थोड़े से धनवान व्यक्तियों को जिनके पास राष्ट्र की संपत्ति का बहुत बड़ा अंश एकत्रित है सामान्य रूप से नीचे की ओर समतल करना चाहिए तथा उन लाखों निर्धन, मूक व्यक्तियों के स्तर को ऊपर की ओर ले जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त हर एक को एक संतुलित आहार, रहने के लिए समुचित आवास, अपने तन को ढकने के लिए पर्याप्त कपड़ा, बच्चों को शिक्षित करने की सुविधाएँ तथा यथेष्ट चिकित्सा संबंधी सहायता निश्चित रूप से मिलनी चाहिए। अतः आर्थिक समानता का वास्तविक अर्थ है कि "हर एक को उसकी आवश्यकतानुसार सुविधाएँ प्राप्त हों"। गांधी एक प्राणहीन समानता पैदा नहीं करना चाहते थे। जहाँ हर एक मानव अपनी योग्यता के अधिक से अधिक प्रयोग की संभावना में अक्षम हो जाए या अक्षम कर दिया जाए क्योंकि ऐसा समाज अपने विनाश के बीज साथ ही वहन करता है।

वे चाहते थे कि धनी अपनी संपत्ति को निर्धन की धरोहर मानकर रखें ताकि उनके लिए वह उनको छोड़ सकें। हिंसात्मक ढंग से धनी को संपत्ति से बेदखल कर देने से आर्थिक समता की स्थिति को नहीं लाया जा सकता। हिंसात्मक क्रिया से समाज को कोई लाभ नहीं होता क्योंकि उससे एक मानव के स्वाभाविक गुण नष्ट हो जाते हैं जो कि उत्पादन करने की योग्यता रखता हो तथा संपत्ति में वृद्धि कर सकता हो।

iv) जाति व्यवस्था एवं अस्पृश्यता

अपने पहले के लेखों में गांधी वर्णाश्रम व्यवस्था के प्रति अनुकूल जान पड़ते हैं जिसमें उनका निहित अर्थ आत्म-संयम, संरक्षण तथा शक्ति की मितव्ययिता है। किसी एक वर्ण को दूसरे से अन्यायपूर्ण अपनी उच्च परिस्थिति के हक की माँग करना मानवीय प्रतिष्ठा को नकारना है, और विशेषतया समाज के उस भाग के लिए जिसे एक अनुचित ढंग से अस्पृश्य माना जाता हो। अस्पृश्यता एक अभिशाप है जो हमको प्राप्त हुई है। जब तक हिंदू अस्पृश्यता को अपने धर्म का हिस्सा मानते रहेंगे, तब तक स्वराज नहीं प्राप्त हो सकता।

v) रचनात्मक कार्यक्रम

गांधी जी ने अस्पृश्यों को "हरिजन" नाम से संबोधित किया था। वे अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए इतने चिंतित थे कि उन्होंने भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की साधारण सदस्यता से इस्तीफा दे दिया और केवल अस्पृश्यता उन्मूलन के लिए काम करने का निश्चय किया।

अस्पृश्यता को दूर करने तथा खादी को प्रोत्साहित करने के अतिरिक्त गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम में सांप्रदायिक एकता, मद्य निषेध, ग्रामीण स्वच्छता, स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य-विज्ञान, बुनियादी शिक्षा, प्रौढ़ शिक्षा तथा साक्षरता, स्त्रियों का उत्थान, हिंदी का प्रसार, आर्थिक समानता के लिए कार्य, आदिवासियों की सेवा तथा छात्रों, किसानों एवं श्रमिकों का सहयोग सम्मिलित है।

गांधीवादी विचारधारा में सामुदायिक व्यवस्था के उद्देश्य शोषणरहित जीवन पर निर्भर थे जो कि गांधी के द्वारा प्रदत्त ग्यारह संकल्पों से समरसता रखे थे। ये संकल्प थे -- सत्य, अहिंसा, स्वाद नियंत्रण, चोरी न करना, अपरिग्रह, अभय, स्वदेशी, अस्पृश्यता हटाया जाना, श्रम, सहनशीलता करना तथा धर्मों में समानता।

बोध प्रश्न 3

i) कार्ल मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी समाज की क्या सामाजिक समस्याएं होती हैं? सात पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

ii) गांधीवादी विचारधारा की प्रमुख विशेषताएं बताइए। आठ पंक्तियों में उत्तर दीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2.4 इन दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता

प्रकार्यवादी, मार्क्सवादी तथा गांधीवादी दृष्टिकोणों ने अपने परिप्रेक्ष्य में सामाजिक समस्याओं को समझने का प्रयास किया है। कोई भी दृष्टिकोण अंतिम नहीं माना जा सकता। हमको ध्यान रखना है कि इन दृष्टिकोणों का अपने काल एवं उद्गम-स्थान की आवश्यकताओं के अनुसार उद्भव हुआ। शास्त्रीय प्रकार्यवादी जैसे काम्टे, स्पेंसर, दुर्खीम का संबंध उन्नीसवीं शताब्दी के यूरोपीय समाज की समस्याओं से था जो कि रूपांतरण की प्रक्रिया की नवीन चुनौतियों का अनुभव कर रहा था अर्थात् ग्रामीण से नगरीय, कृषि से औद्योगिक, सामंती से पूंजीवादी व्यवस्था की ओर बढ़ रहा था। स्वाभाविक रूप से उनका संबंध समाज के पुनर्गठन, प्रकार्यात्मक एकीकरण तथा सामाजिक एकात्मकता से था। दूसरी ओर कार्ल मार्क्स का अधिकांश संबंध मानव समाज के ऐतिहासिक विकास, औद्योगिकीकरण एवं

पूँजीवाद से उत्पन्न समस्याओं से था जैसे कि परकीयकरण अथवा सिवसंवधन, मानव का मानव द्वारा शोषण, अमानवीकरण तथा कार्य करने की दशाएँ। गांधी का प्रमुख संबंध भारतीय समाज की समस्याओं से था जैसे कि उपनिवेशवाद, साम्राज्यवादी शोषण, स्त्रियों की परिस्थिति, मद्यपान, ग्रामीण समुदायों का दुर्बल होना तथा विनाश की ओर बढ़ना तथा घरेलू उद्योग धंधों का विनाश होना, इत्यादि।

इन विचारधाराओं की कुछ सीमाएँ थी जिनके बारे में प्रश्न भी उठाए गए। आइए, इन सीमाओं की एक-एक कर पहचान करें।

2.4.1 प्रकार्यवादी दृष्टिकोण का समीक्षात्मक पुनर्विवेचन

इन दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता के विषय में सवाल उठाए गए हैं। संक्षेप में हम इन दृष्टिकोणों की अपर्याप्तता का विवेचन करेंगे। प्रकार्यवादी दृष्टिकोण की इन मूलभूत प्रस्तावनाओं पर पी.ए. सोरोकिन ने अपनी पुस्तक "सोशियालोजिकल थियरीज़ टुडे", 1996 में आपत्ति की है। सोरोकिन के अनुसार, दासों एवं स्वामियों, अधीन तथा उनके विजेताओं के सहभाजित अभिविन्यासों तथा लक्ष्यों में समानता नहीं है जबकि यह तथ्य है कि वे एक ही समाज के भाग हैं। दुष्क्रियात्मक पक्षों के विषय में, सोरोकिन सवाल करता है कि सुकरात, ईसा तथा मार्क्स की क्रियाओं को क्या कहा जा सकता है – प्रकार्यवादी या दुष्क्रियावादी। पूर्वकालीन ईसाई समुदायों द्वारा दिया गया बल या नागरिक अधिकारों के लिए काम करने वालों के द्वारा दिया गया बल अनुकूलन पर है या प्रतिकूलन पर। इन प्रश्नों के उत्तर इस पर निर्भर होंगे कि हम अपनी पहचान क्रमशः इन समाजों में किस पक्ष के साथ रखते हैं।

प्रकार्यवादी दृष्टिकोण अपने विवेचन में एक प्रभाव को एक कारण मानती है। वह व्याख्या करती है कि एक व्यवस्था के भाग इसलिए अस्तित्व रखते हैं क्योंकि उनके लाभदायक परिणाम समग्र व्यवस्था के लिए हैं। इसके अतिरिक्त, वह मानव क्रियाओं का निर्धारणवादी दृष्टिकोण प्रदान करता है क्योंकि यह वर्णन किया गया है कि मानव का व्यवहार व्यवस्था द्वारा निर्धारित है। मानव को एक स्वचालित यंत्र, कार्यक्रमबद्ध, निदेशित तथा व्यवस्था द्वारा नियंत्रित चित्रित किया गया है।

एल्विन गूल्डनर कहता है कि साध्यों तथा मूल्यों, जिनका मानव अनुसरण करता है कि महत्ता पर बल देते समय पारसन्स कभी नहीं पूछता कि ये किसके साध्य या मूल्य हैं। थोड़े से प्रकार्यवादी इस संभावना को स्वीकार करते हैं कि समाज में कुछ समूह अपने ही हितों के संदर्भ में क्रिया करते हुए दूसरों पर प्रभाव जमाते हैं। इस दृष्टिकोण से, सामाजिक व्यवस्था शक्तिमान के द्वारा आरोपित है तथा मूल्य-मतैक्य केवल प्रभावी समूह की स्थिति को वैधता प्रदान करता है।

प्रकार्यवादी, इस प्रकार के हितों के संघर्ष का मान्यता प्रदान करने में असफल हैं जिनमें अस्थिरता तथा अव्यवस्था उत्पन्न करने की प्रवृत्ति होती है। संघर्ष भी व्यवस्था का एक अभिन्न अंग है, अतएव सामाजिक समस्याओं के समाजशास्त्रीय विश्लेषण में समान रूप से सार्थक हैं। प्रकार्यवादी दृष्टिकोण में, ऐतिहासिक व्याख्याओं को समाज तथा उसकी समस्याओं को समझने में बहुत कम स्थान दिया गया है।

2.4.2 मार्क्सवादी दृष्टिकोण की समालोचना

दोनों, प्रकार्यवादी तथा मार्क्सवादी, प्रकृति में निर्धारणवादी हैं। पहले में निर्धारणवादी कारक सामाजिक व्यवस्था है जबकि दूसरे में वह कारक उत्पादन की पद्धति तथा अर्थव्यवस्था है।

मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आलोचनात्मक समीक्षा में हमको मार्क्सवाद के निम्नलिखित दो पक्षों को अवश्य ध्यान में रखना चाहिए :

- मार्क्सवाद एक सिद्धांत के रूप में,
- मार्क्सवाद एक कार्यान्वयन के रूप में।

पहले पक्ष के संबंध में मार्क्सवादी दृष्टिकोण ने भौतिक शक्तियों तथा संघर्ष की भूमिका पर अत्याधिक बल दिया है। उसने पूँजीवादी समाज की वर्ग संरचना का अति-सरलीकरण किया है जिसमें नवीन धंधे, व्यवस्था तथा मध्य वर्ग को ध्यान से हटा दिया है।

कार्यान्वयन में मार्क्सवादी कल्पनालोक पहले की सोवियत यूनियन के साम्यवादी राज्यों तथा पूर्वी यूरोप द्वारा प्राप्त न हो सका। साम्यवादी राज्यों की विशेषताएँ थीं : तानाशाही पुलिस राज्य, अकुशलता एवं भ्रष्टाचार। परिणामतः न केवल मार्क्सवादी राज्य ढह गए बल्कि मार्क्सवाद का स्वप्न सोवियत यूनियन तथा पूर्वी यूरोप में चकनाचूर हो गया।

मार्क्स ने भविष्यवाणी की थी कि अंत में मध्य वर्ग समाप्त हो जाएगा और केवल दो वर्ग रहेंगे अर्थात् पूँजीपति तथा श्रमिक वर्ग। परंतु एक विपरीत प्रक्रिया प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है जिसके द्वारा समृद्ध हाथ से काम करने वाले श्रमिकों की बढ़ती हुई संख्या मध्यवर्ती स्तर में प्रवेश करके मध्य वर्ग बनता जा रहा है जहाँ जनसंख्या में बहु-संख्या मध्यम वर्ग की है न कि श्रमिक वर्ग की। यह प्रक्रिया दोनों पूँजीवादी तथा साम्यवादी समाजों में दृष्टिगोचर हो रही है।

जिलास के अनुसार साम्यवादी राज्यों में एक नए वर्ग का उदय हुआ जिसमें, साम्यवादी नेता भी शामिल थे। इस वर्ग के पास राजनीतिक शक्ति और बेहतर अवसर उपलब्ध थे। साम्यवादी राज्यों में भी वर्ग, संरचना और नए वर्ग का अधिसंख्यक वर्ग पर अधिपत्य पूरी तरह समाप्त नहीं किया जा सका।

सामाजिक समस्याओं के कई कारण थे। किसी एक कारण से विश्लेषण संभव नहीं था। हालांकि मार्क्स ने केवल आर्थिक कारणों पर ही बल दिया था। इसके अलावा संस्कृति और सामाजिक संरचना के समग्र दृष्टिकोण में अन्तिम परिणाम पर बल देना बहुत तर्कसंगत नहीं था।

समाज बदल रहा था। कई प्रवृत्तियाँ एक दूसरे में घुल मिल रही थीं, कई में टकराव हो रहा था। इससे नई चेतना पैदा हो रही थी और इसके परिणामस्वरूप पहले से अलग प्रकार की सामाजिक समस्याएँ पैदा हो रही थीं। सामाजिक समस्याओं को एकीकृत दृष्टिकोण के संदर्भ में दिक् और काल का संदर्भ महत्वपूर्ण हो गया।

2.4.3 गांधीवादी दृष्टिकोण पर पुनर्दृष्टि

गांधीवादी दृष्टिकोण वर्तमान व्यवस्था की आलोचनात्मक समीक्षा करता है, एक नवीन समाज के निश्चित मूल तत्वों को प्रस्तुत करता है तथा सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए एक पद्धतिशास्त्र प्रदान करता है। आलोचकों की युक्ति है कि गांधीवादी दृष्टिकोण में मौलिकता का अभाव तथा यह परंपरात्मक भारतीय विचारों, समाजवाद तथा उदारतावाद का एक सम्मिश्रण वह आदर्शवादी है तथा सामाजिक वास्तविकता की रूक्ष प्रकृति से परे है। अन्याय के प्रतिकार की गांधीवादी सत्याग्रह की पद्धति आज किसी न किसी रूप में सारे विश्व में मान्य है। संयुक्त राज्य अमेरिका में निवास करने वाले लोगों ने गोरों के अन्याय से मुक्ति के लिए इस पद्धति का सफलतापूर्वक उपयोग किया है। दक्षिण अफ्रीका के नस्ल

विरोधी संघर्ष में भी इस पद्धति का उपयोग किया गया है। पूर्वी यूरोप की जनता ने साम्यवादी तानाशाही के विरुद्ध भी इसका उपयोग किया है।

अभ्यास 3

किसी गांधीवादी रचनात्मक कार्यक्रम (जैसे-कि गांधी आश्रम, हरिजन सेवक संघ या आदिम जाति सेवक संघ) के कार्यों पर एक पृष्ठ का एक नोट लिखिए।

2.5 समकालीन सामाजिक वास्तविकता : दुष्क्रियात्मक पक्ष

वे क्रियाएँ तथा दशाएँ जो समाज की सरल प्रकार्यात्मकता पर प्रतिकूल प्रभाव डालती हैं दुष्क्रियात्मक कहलाती हैं। समाजशास्त्र में इस शब्द का प्रयोग मर्टन ने किया। सभी समाजों में अपराध, बाल अपराध, मद्यपान, मादक द्रव्य व्यसन, वेश्यावृत्ति, निर्धनता तथा सामाजिक-आर्थिक असमानता दुष्क्रियात्मक स्वीकार की गई हैं।

समकालीन समाज में अनेक दुष्क्रियात्मक क्रियाएँ एवं दशाएँ हैं जो विश्व, राष्ट्रीय तथा स्थानीय स्तर पर पाई जाती हैं। इन तीनों स्तरों की दुष्क्रियात्मक क्रियाएँ एक दूसरे से बड़ी गहराई से जुड़ी हुई हैं।

2.5.1 विश्व स्तरीय दुष्क्रियाएँ

कई ऐसी संस्थाएँ हैं जो विश्व स्तर पर कार्य करती हैं। प्रथम विश्व युद्ध के बाद "लीग ऑफ नेशंस" की स्थापना भविष्य में होने वाले युद्धों की रोकथाम और विभिन्न राष्ट्रों के बीच पारस्परिक समझ की अभिवृद्धि के लिए हुई थी। यह अपने कार्यों को प्रभावशाली ढंग से पूरा न कर सकी। अंत में सन् 1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत हो गई। प्रथम और द्वितीय विश्वयुद्ध में भीषण बर्बादी हुई। जब तक यू.एस.एस.आर. विघटित नहीं हुआ तब तक शीत युद्ध की धमकी और आणविक अस्त्रों के भय का अनुभव विश्वव्यापी स्तर पर मानव जाति द्वारा किया गया। हाल ही के दशकों में धार्मिक रूढ़िवाद के उद्भव से बेरोज़गार की दर में वृद्धि, अर्थव्यवस्था की मंदवृद्धि, सार्वभौमिक आतंकवाद के आविर्भाव की प्रबल सार्वभौमिक चुनौतियाँ हैं।

दुनिया अब भूमंडलीकृत हो गई है, इसलिए सामाजिक समस्याएँ राष्ट्रीय सीमाओं में कैद नहीं रह गई हैं परंतु कुछ समस्याएँ कुछ खास देशों में ही प्रमुख रूप से सक्रिय हैं। इस संदर्भ में हम राष्ट्रीय स्तर पर भारत की कुछ दुष्क्रियाओं और समस्याओं की चर्चा करने जा रहे हैं। संस्था के रूप में धर्म का काम आदमी आदमी के बीच भाईचारा और सौहार्द फैलाना है। दुर्भाग्यवश भारत में विभाजन के सम्प्रदायवाद के दुष्क्रियात्मक पक्षों को बढ़ावा दिया है। इसके परिणामस्वरूप यहां कट्टरपंथ और आतंकवाद ने काफी तबाही मचाई है।

इसी प्रकार भारतीय समाज की कुछ विशिष्ट समस्याएँ हैं, गरीबी, अस्पृश्यता, जातिवाद और भ्रष्टाचार, जो भारतीय प्रजातंत्र को नीचे से झकझोर देता है।

2.5.2 स्थानीय दुष्क्रियाएँ

भारतीय समाज की कुछ अन्य दुष्क्रियात्मक दशाएँ हैं जो स्थान विशेष, क्षेत्र अथवा राज्यों से संबंधित हैं। उदाहरणार्थ आतंकवादी गतिविधियाँ मुख्यतया कश्मीर, और पूर्वोत्तर राज्यों में केंद्रित हैं। इसी तरह, जातीय हिंसा, लिंग आधारित सामाजिक भेदभाव, संरक्षणवाद इत्यादि दुष्क्रियात्मक गतिविधियों के स्थानीय रूप हैं।

वास्तविक प्रश्न यह है कि कैसे और क्यों ऐसी दुष्क्रियात्मक दशाएँ समाज में विकसित होती हैं। भिन्न-भिन्न समाजों में समस्याओं के अपने विशिष्ट संदर्भ होते हैं। भारत की सामाजिक, आर्थिक दशाओं तथा पश्चिमी यूरोप एवं उत्तरी अमरीका में अंतर है। इस प्रकार इन समाजों के सम्मुख जिन सामाजिक समस्याओं की चुनौती है उनमें भी अंतर है।

एक समाज में दुष्क्रियाओं का निकट संबंध सामाजिक-आर्थिक तथा राजनीतिक विकास से होता है। पश्चिमी औद्योगिक पूँजीवादी समाज जो वैचारिक समर्थन प्रकार्यात्मक सिद्धांत से प्राप्त करते हैं अपराधों, बाल अपराध, मद्यपान, अकेलापन, यौन अपराध मानसिक व्यवधान, तलाक की बढ़ती हुई दर तथा बढ़ती आर्थिक असमानता की चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। उसी प्रकार से, पहले के सोवियत रूस में तथा पूर्वी यूरोप में, जहाँ पिछले सात दशकों से शोषण, अपमाननीयकरण, अजनवीपन तथा सामाजिक-आर्थिक असमानता से मुक्त समाज की रचना का प्रयास किया गया था, वह भी दुःस्वप्न सिद्ध हुआ है। भारतीय समाज भी जहाँ गांधी ने अपने सत्य, अहिंसा तथा नैतिक व्यवस्था के प्रयोग किए आज हिंसा, आतंकवाद, अपराध एवं भ्रष्टाचार की बढ़ती हुई चुनौतियों का सामना कर रहा है।

इन तथ्यों के प्रकाश में यह आवश्यक है कि वैकल्पिक प्रतिमानों को विकसित किया जाए। जो कि सामाजिक समस्याओं की प्रकृति की व्याख्या सामाजिक-आर्थिक विकास के संदर्भ में कर सकें।

2.6 रूपांतरण की प्रतिमानों एवं सामाजिक समस्याएँ

पिछले कुछ वर्षों में प्रतिमान के प्रत्यय का सामाजिक विज्ञानों में बहुधा प्रयोग हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ है – एक शब्द की विभक्तियाँ जिसे उदाहरण के लिए सारणीबद्ध किया गया है, या भिन्न-भिन्न शब्दों या मोड़ या वक्र के व्याकरणिक संबंधों को व्यक्त करना। इस प्रकार प्रतिमान का प्रत्यय व्याकरण से आया है। सर्वप्रथम, सामाजिक विज्ञानों में प्रतिमान प्रत्यय का सैद्धांतिक तथा दार्शनिक निरूपण थामस एस. कुन ने अपनी पुस्तक "द स्ट्रक्चर ऑफ़ साइन्टीफिक रिवोल्यूशन", 1962, में किया था। सामाजिक विज्ञानों में इस प्रत्यय का प्रयोग विचारों का लीक से हटना, विचारों में क्रांति, उत्कट विवेचन तथा वाद-विवाद के उपरांत पुराने विचारों के स्थान पर विचारों की नवीन परंपराओं के उद्भव के अर्थ में किया जाता है।

दो सौ साल के दर्मियान सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक विकास के प्रतिमानों के बारे में एक बड़े पैमाने पर वाद-विवाद चल रहा है। इस प्रक्रिया में, विचारों में बदलाव हुए तथा एक वैचारिकी के स्थान पर दूसरी वैचारिकी को अपनाया गया। आधुनिक शब्दावली में इसे प्रतिमान का बदलाव कहा जा सकता है या विकास की पुरानी प्रतिमान के स्थान पर विकास की नवीन प्रतिमान का उद्भव हुआ। विकास की इन प्रतिमानों को हम इन निम्नलिखित वर्गों में विभाजित कर सकते हैं :

- उदारतावादी-पूँजीपति
- साम्यवादी
- लोकतंत्रीय समाजवादी।
- भारतीय प्रयोग और गांधीवादी प्रतिमान

2.6.1 उदारतावादी-पूँजीवादी प्रतिमान

उदारतावादी औद्योगिक लोकतंत्र ने विचारों के नवीन प्रतिमानों को जनित किया जो पूर्वकालों के विचारों में पूर्णतया भिन्न थे। इस प्रतिमान का प्रमुख बल लोकतंत्र, राजनीतिक

स्वतंत्रता, स्वतंत्र उद्यम, औद्योगिकीकरण, आधुनिक प्रौद्योगिकी तथा जन उत्पादन पर था। इन विचारों के अमल के सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक परिणामस्वरूप लोकतांत्रिक राज्य, बड़े पैमाने का औद्योगिकीकरण, ग्रामों से नगरों को प्रवासन, यूरोप एवं उत्तरी अमरीका में अपूर्वगामी नगरीकरण जैसी प्रक्रियाएँ तीव्रता के साथ उभरीं। इनके फलस्वरूप नामहीनता, अवैयक्तिक संबंध तथा सामाजिक नियंत्रण की परंपरात्मक पद्धति में दिखाई पड़ता है।

लोकतंत्रीय पूँजीवादी समाज अपने नागरिकों को रहन सहन का एक न्यूनतम स्तर तथा पर्याप्त राजनीतिक स्वतंत्रता प्रदान करने में सफल हुआ है। साथ ही, विकसित तथा औद्योगिकीकृत समाज अपराध, श्वेतवसन अपराध, युद्ध का भय, बाल अपराध, प्रतिमानहीनता, मानसिक स्वास्थ्य समस्या, प्रजाति पर आधारित भेदभाव तथा उदासीनता से पीड़ित हैं। निर्धनता तथा लिंग भेद की समस्याओं के समाधान में वह सफल नहीं हुआ है। सन् 1992 में अमेरिका में उपद्रव हुए। प्रजातीय घृणा की वृद्धि का एक उदाहरण है। इसी तरह की गोचर व अगोचर प्रजातीय घृणा की प्रवृत्तियाँ इंग्लैंड, जर्मनी तथा फ्रांस में भी दिखाई देती हैं।

2.6.2 साम्यवादी प्रतिमान

सामाजिक तथा आर्थिक विकास की साम्यवादी प्रतिमान मुख्यतः मार्क्स तथा लेनिन के सिद्धांतों पर आधारित है। साम्यवादी वैचारिकी पूँजीवादी वैचारिकी की विरोधी है। उसका प्रमुख बल सामूहिकता, साम्यवादी राज्य द्वारा उत्पादन के साधनों पर नियंत्रण, सर्वहारा तथा अधिनायकत्व तथा उत्पादन के साधनों तथा स्रोतों का उपयोग श्रमिक वर्ग के हित के लिए करने पर है। अपने शास्त्रीय विश्लेषण में मार्क्स का विचार था कि उत्पादन की पूँजीवादी व्यवस्था ने वर्ग संघर्ष, शोषण, सामाजिक तथा आर्थिक असमानता, श्रमिक वर्ग का दमन तथा उनका उत्पादन के साधनों के स्वामित्व से विसंबंधन की समस्याएँ पैदा किया है।

साम्यवाद का दावा है कि वह सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था का विकल्प प्रदान करता है। पूँजीवादी व्यवस्था से पैदा हुई इन सामाजिक समस्याओं का उसके द्वारा समाधान मान लिया गया था। एक वैकल्पिक प्रतिमान की तरह साम्यवाद सोवियत रूस में 1917 से 191 तक, चीन में 1949 से, पूर्वी यूरोप के अधिकांश देशों में 1945 से 1991, वियतनाम में 1945 तथा क्यूबा में 1955 से अमल में लाया गया। साम्यवादी समाज अनेक सामाजिक राजनीतिक समस्याओं से पीड़ित रहे जैसे कि अधिनायकत्व, स्वतंत्रता का अभाव, बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार, अकुशलता, तलाक में वृद्धि, त्रस्त करने वाली गर्भपात की दर, अकेलापन तथा भय का मनस्ताप। साम्यवादी समाज निर्धनता की समस्या, जीवन के गुणात्मक पक्ष के एक न्यूनतम स्तर का अभाव, इत्यादि पूर्ण रूप से हल न कर सके। परिणामतः साम्यवाद केवल सोवियत रूस में ही नहीं बल्कि पूर्वीय यूरोप में भी ढह गया।

2.6.3 लोकतंत्रीय समाजवाद की प्रतिमान

उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश से विचारकों के एक समूह ने विशेषतया इंग्लैंड में फेबियन तथा फ्रांस एवं जर्मनी में भी कुछ अन्य लोगों ने साम्यवाद के दावे के प्रति एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाया। उनका विचार था कि पूँजीवाद तथा साम्यवाद दोनों प्रणालियाँ औद्योगिक तथा प्रौद्योगिक क्रांति द्वारा प्रदत्त चुनौतियों का प्रत्युत्तर देने में अक्षम हैं। पूँजीवाद आर्थिक स्वतंत्रता नहीं प्रदान कर सकता है और साम्यवाद राजनीतिक स्वतंत्रता नहीं दे सकता है। दोनों प्रणालियाँ मानवीय गरिमा को नकारात्मक रूप से प्रभावित करती हैं। नया समाज तभी बन सकता है जब मानव सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक असमानताओं और उनकी शक्ति से उत्पन्न तनाव से स्वतंत्र हो।

अनेक पश्चिमी यूरोपीय देशों के समाजवादी तथा श्रमिक दलों ने प्रथम महायुद्ध के बाद शक्ति प्रदान की। ब्रिटेन में श्रमिक दल, स्वीडन तथा जर्मनी में सामाजिक लोकतंत्रीय दल ने अपने देशों में लोकतंत्रीय समाजवाद के आदर्शों को लागू करने की कोशिश की। ठोस अर्थों में, उनके सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक आदर्शों ने श्रमिक वर्ग के हितों के लिए सामाजिक सुरक्षा के उपायों का रूप ग्रहण किया। जैसे कि ब्रिटेन, फ्रांस, स्वीडन, जर्मनी में प्रमुख उद्योगों का राष्ट्रीयकरण, कार्य की सुरक्षा, रोजगार, न्यूनतम मजदूरी, स्वास्थ्य योजना के प्रयास किए गए।

राज्य की हस्तक्षेप की नीति होते हुए भी अपराध, बाल अपराध, प्रजातीय भेद भाव, लिंग भेद, मादक द्रव्य व्यसन, यौन अपराध, बेकारी, मद्यपान, तलाक की वृद्धि तथा वेश्यावृत्ति इत्यादि समस्याएँ स्वीडन, फ्रांस तथा जर्मनी में जहाँ लोकतंत्रीय समाजवादी किसी न किसी काल में शक्ति में रहे थे, हल न हो सकीं।

2.6.4 भारतीय प्रयोग और गांधीवादी प्रतिमान

1947 के बाद भारत के आजाद होने पर लोकतांत्रिक समाजवाद निश्चित अर्थव्यवस्था और गांधीवादी दर्शन के पालन की नीति अपनाई गई।

स्वाधीनता के बाद भारत ने गांधीवादी विचारधारा के साथ ही साथ लोकतांत्रिक समाजवादी पथ का अनुसरण किया। भारत ने सामाजिक-आर्थिक रूपांतरण के लिए मिश्रित अर्थव्यवस्था सामाजिक-आर्थिक नियोजन, पंचवर्षीय योजनाएँ, सामुदायिक विकास, निर्धनता की समाप्ति, अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के हित की नीति, सामाजिक तथा शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों के सामाजिक कल्याण पर विशेष बल दिया। शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा तथा श्रमिकों की सुरक्षा में भी अनेक प्रयास किए गए।

भारत में निर्धनता, अस्वास्थ्य, नगरीय केंद्रों में गंदी बस्तियाँ, निश्चरता, मादक द्रव्य व्यसन में वृद्धि, मद्यपान, अस्पृश्यता, बढ़ता हुआ आतंकवाद एवं हिंसा को आज तक हल नहीं किया जा सका है। इस संदर्भ में हमको ध्यान में रखना है कि यह समस्याएँ केवल राज्य के हस्तक्षेप द्वारा हल नहीं की जा सकतीं। राज्य की अपनी भी सीमाएँ होती हैं।

2.7 राज्य हस्तक्षेप की सीमाएँ

आधुनिक काल में राज्य ताकतवर संस्था के रूप में उभरा। 17वीं शताब्दी में यूरोप में यह प्रक्रिया शुरू हुई, जिससे चर्च की ताकत में लगातार कमी आई। चर्च और राज्यों के अधिकारों का बंटवारा हुआ। यह प्रक्रिया निम्नलिखित दो चरणों से होकर गुजरी:

- अहस्तक्षेप (लेसेफेयर) की नीति
- सामूहिकतावादी विचारधाराओं का उदय

2.7.1 अहस्तक्षेप (लेसेफेयर) की नीति

उन्नीसवीं शताब्दी में "अहस्तक्षेप नीति" पर अधिक बल था जिसका अर्थ है नागरिक के दैनिक जीवन में राज्य का न्यूनतम हस्तक्षेप। राज्य का प्रमुख उद्देश्य केवल कानून को बाध्यतापूर्वक लागू करना तथा व्यवस्था कायम करना होना चाहिए और राज्य को नागरिकों के हितों की रक्षा के लिए कल्याणकारी उपाय की पहल नहीं करनी चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपना हित देखना-समझना चाहिए।

2.7.2 सामूहिकतावादी-विचारधाराएं

साम्यवादी, समाजवादी तथा फ्रांसीवाद वैचारिकी के प्रभाव में सामाजिक समस्याओं का सामना करने तथा कल्याणकारी उपायों के संवर्धन में राज्य की भूमिका पर अधिक बल दिया जा रहा था। 1929 की विशाल मंदी के पश्चात् पूंजीवादी राज्यों जैसे संयुक्त राज्य अमेरिका तथा फ्रांस ने भी अर्थव्यवस्था तथा बाज़ार के नियमन के लिए हस्तक्षेप किया। इन राज्यों ने बेकारी नियंत्रित करने के लिए, कारखानों के बंद होने की समस्या तथा असुरक्षा की समस्या के लिए कुछ विशेष कदम उठाए।

राज्य सबसे शक्तिशाली संस्था है और निस्संदेह उसकी भूमिकाएँ हिंसा, सांप्रदायिकता, सामाजिक भेदभाव के नियंत्रण में तथा सामाजिक सुरक्षा तथा सेवायोजन के संवर्धन में बहुत महत्व रखती हैं।

2.7.3 सीमाएं

अहस्तक्षेप की नीति का पूंजीवादी राज्यों ने पूरी तरह अनुकरण नहीं किया। 1919 के बाद खास तौर पर राज्य ने कई क्षेत्रों में हस्तक्षेप किया। इसी प्रकार राज्य हस्तक्षेप के सामूहिकतावादी विचारधाराएं भी सफल नहीं हुईं। परंतु राज्य के हस्तक्षेप की सीमाएँ हैं। सामाजिक चेतना, नागरिकता का भाव, जनता में दायित्व की भावना के द्वारा सामाजिक समस्याओं को और प्रभावी रूप से रोका जा सकता है। जब तक समाज द्वारा कल्याणकारी उपायों की स्वीकृति नहीं होगी राज्य द्वारा किए गए प्रयास प्रभावी नहीं हो सकते। इस प्रकार हमको ध्यान में रखना होगा कि राज्य द्वारा प्रारंभ किए गए उपाय अपनी सीमाएँ रखते हैं। समाज तथा राज्य दोनों मिलकर सामाजिक समस्याओं द्वारा उपस्थित चुनौतियों का प्रभावपूर्ण समाधान कर सकते हैं।

बोध प्रश्न 4

i) प्रकार्यवादी एवं मार्क्सवादी दृष्टिकोणों की प्रमुख अपर्याप्तताओं का चार-चार पंक्तियों में वर्णन कीजिए।

क)

.....

.....

.....

.....

ख)

.....

.....

.....

.....

ii) प्रतिमान का क्या अर्थ है?

क)

.....

2.8 सारांश

इस इकाई का विषय प्रवेश सामाजिक रूपांतरण तथा सामाजिक समस्याओं के पारस्परिक संबंध पर विचार से होता है। सामाजिक समस्याओं को समझने के लिए पूर्वकालीन तथा आधुनिक दृष्टिकोण तथा उनके बीच अंतर का वर्णन इस इकाई में किया गया है। आपने प्रकार्यवादी, मार्क्सवादी दृष्टिकोणों एवं गांधीवादी विचारों तथा उनकी अपर्याप्तता की जानकारी विस्तार से प्राप्त कर ली है। इसके उपरान्त विकास तथा उसके द्वारा जनित समस्याओं की प्रतिमानों का भी वर्णन किया गया है। इस इकाई के अंतिम भाग में सामाजिक समस्याओं का समाधान प्रदान करने में राज्य की क्रियाओं की परिसीमाओं पर हमने प्रकाश डाला है।

2.9 शब्दावली

प्रतिमानहीनता : सर्वप्रथम, इस शब्द का प्रयोग एमिल दुर्खीम ने एक समाज में प्रमाणहीनता तथा व्यक्तियों में समाज के अभाव के संकेतक के रूप में किया था। ऐसी स्थिति में, एक व्यक्ति या समूह यह निर्णय नहीं ले पाता कि क्या करना चाहिए या क्या नहीं करना चाहिए।

दुष्क्रिया : किसी घटना या क्रिया के परिणाम जो एक समाज की प्रकार्यात्मकता, एकता तथा स्थायित्व पर विरोधी प्रभाव डालते हैं।

सत्याग्रह : अन्याय के प्रति शांतिपूर्ण एवं सत्यशील प्रतिरोध।

प्रतिमान : इस प्रत्यय का शाब्दिक अर्थ शब्द के स्वर परिवर्तन या भिन्न-भिन्न शब्दों के मध्य एक व्याकरणिय संबंध से है। सामाजिक विज्ञान में इसका प्रयोग थामस एस. क्यून ने 1962 में विचारों के लीक से हटने अथवा विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन के अर्थ में किया था।

सामूहिक चेतना : दुर्खीम ने इस प्रत्यय के, फ्रांसीसी प्रतिरूप "ला कांस्यन्स क्लेक्टिव" का प्रयोग सामान्य विश्वासों एवं समाज के स्वीकृत प्रमाणों जो सामाजिक एकात्मकता का संवर्धन करते हैं, के लिए किया था।

परकीयकरण : इसका अर्थ पृथक्करण, अजनबीपन अथवा विच्छिन्नता से है। इस अवधारणा का प्रयोग हीगेल ने किया था परंतु एक समाजशास्त्रीय प्रत्यय के रूप में इसे कार्ल मार्क्स ने विकसित किया।

पूँजीवाद : एक आर्थिक व्यवस्था जिसके तत्व उत्पादन के साधनों का वैयक्तिक स्वामित्व, प्रतिस्पर्धा, निर्बाध बाजार तथा लाभ की एक प्रबल अभिप्रेरणा है।

साम्यवाद : एक सामाजिक दर्शन के रूप में, आर्थिक सेवाओं तथा उत्पादन के भौतिक साधनों के सार्वजनिक स्वामित्व का प्रतिनिधित्व करता है। इसका विश्वास राज्य द्वारा नियंत्रण तथा सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व में है।

विघटन : इस प्रत्यय का अर्थ सामाजिक व्यवस्था या उसकी क्रियाओं में विच्छेद से है।

2.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

i) नगरीय औद्योगिक सामाजिक संरचना की विशेषता त्वरित सामाजिक रूपांतरण,

नगरों, उच्च प्रौद्योगिकी, आधुनिक उत्पादन, उपभोक्तावाद, परिवहन एवं संचार के त्वरित साधन, प्रवासन, गतिशीलता, द्वितीयक समूह तथा अवैयक्तिक संबंधों का होना है।

- ii) क) सीजर बेकारिया (1786), इटली
ख) जेरमी बेन्थम (1823), इंग्लैंड
- ii) सीजर लाब्रोसो (1936-1909), इटली।
- iv) • अपराध तथा अन्य सामाजिक समस्याओं का पूर्वकालीन बोध अंध विश्वास एवं अज्ञानता पर आधारित था।
• शास्त्रीय तथा भौतिक शारीरिक दृष्टिकोणों की आज केवल ऐतिहासिक महत्ता है। वे व्यक्तियों पर केंद्रित हैं।
• उन्होंने सामाजिक, आर्थिक तथा सांस्कृतिक तत्त्वों पर पर्याप्त बल नहीं दिया है।

बोध प्रश्न 2

- i) दुष्क्रिया एक घटना या क्रिया का परिणाम है जो एक समाज की प्रकार्यात्मकता, एकता एवं स्थायित्व पर विरोधी प्रभाव डालती है। सिद्धांत की इस प्रवृत्ति को कि एक समाज की प्रत्येक वस्तु सद्भाव तथा एकीकरण के लिए कार्य करती है, यह प्रत्यय रोकता है। सामाजिक दुष्क्रिया प्रणाली के एक भाग की, किसी प्रकार्यात्मक आवश्यकता की पूर्ति के लिए विशिष्ट अपर्याप्तता है।
- ii) मर्टन के अनुसार, प्रकार्य एवं सामाजिक समस्याएँ दोनों आत्मनिष्ठ एवं वस्तुनिष्ठ पक्ष रखती हैं। गोचर प्रकार्य प्रकट एवं वस्तुनिष्ठ है, अगोचर प्रकार्य छिपे हुए तथा आत्मनिष्ठ हैं। अगोचर सामाजिक समस्याएँ उन दशाओं की ओर संकेत करती हैं जो सामयिक हितों तथा मूल्य के लिए विषमता रखती हैं परंतु उनके सारगुण को लोग ऐसा समझ नहीं पाते।

बोध प्रश्न 3

- i) मार्क्स के अनुसार पूंजीवादी व्यवस्था की कई सीमाएं होती हैं जैसे :

- अन्तर्मूत अन्तर्विरोध
- मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण
- अपने ही उत्पादों से मजदूरों का अलगाव
- अमानवीयता, निर्धनता और असमानता

मार्क्स के अनुसार सामाजिक-आर्थिक असमानता पूंजीवादी व्यवस्था की प्रमुख समस्या है यहां बल मानव आवश्यकता पर नहीं मानव क्षमता पर होता है।

- ii) गांधीवादी दर्शन सत्य और अहिंसा पर आधारित नैतिक व्यवस्था कायम करने पर बल देता है। इसमें राज्य के हस्तक्षेप का अवकाश नहीं है। गांधी जी सत्ता और अर्थव्यवस्था के विकेंद्रीकरण में दृढ़ विश्वास रखते थे। सत्यग्रह अन्याय से लड़ने का उनका प्रमुख हथियार था। गांधी जी ने भारत में अस्पृश्यता और मद्यपान के खिलाफ अनवरत लड़ाई लड़ी और लोगों का लामबंद किया।

- i) क) प्रकार्यवादी दृष्टिकोण समाज में विद्यमान विरोधाभास तथा भिन्न-भिन्न समूहों तथा वर्गों के बीच हितों के टकराव पर दृष्टि नहीं डालता। वह एक प्रभाव को एक कारण मानता है। वह मानव क्रिया का निर्धारणवादी दृष्टिकोण प्रदान करता है। सामाजिक व्यवस्था को प्रकार्यवादी एक सक्रिय अभिकर्ता के रूप में दर्शाते हैं, जबकि वास्तव में केवल मानव ही क्रिया करते हैं।
- ख) एक सिद्धांत के रूप में मार्क्सवाद ने भौतिक शक्तियों तथा संघर्ष की भूमिका पर अत्यधिक बल दिया है। उसने पूँजीवादी समाज की वर्ग संरचना का अतिसरलीकरण किया है।
- ii) इस प्रत्यय का शाब्दिक अर्थ एक शब्द की विभक्तियाँ हैं या भिन्न-भिन्न शब्दों के मध्य व्याकरणीय संबंध है। समाज विज्ञानों में सर्वप्रथम थॉमस क्यून ने 1962 में इसका प्रयोग विचार के लिए लीक से हटने अथवा वैचारिक क्रांति या बहुत वाद-विवाद या चर्चा के उपरांत विचारों में क्रांति के अर्थ में किया था।
- iii) क) उदार, पूँजीवाद,
 ख) साम्यवाद,
 ग) लोकतंत्रीय समाजवाद।
 घ) गांधीवादी